International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 7 No. 2 January – February - 2026

21 वी सदी के प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श

स्वयंपूर्णा विजय गायकवाड[1], प्रो. डॉ. हनुमंत जगताप[2]

[1]शोध छात्रा, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र, न्यू आर्ट्स कॉमर्स अँड सायन्स कॉलेज, (स्वायत्त) अहिल्यानगर.

[2]शोधनिर्देशक, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे.

Corresponding Author – स्वयंपूर्णा विजय गायकवाड

DOI - 10.5281/zenodo.18654486

सारांश:

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, इतिहास और संघर्ष का सशक्त व यथार्थपरक चित्रण हुआ है। इन उपन्यासों में आदिवासी समाज की समस्याएँ—शोषण, गरीबी, कर्ज, बेरोजगारी, शिक्षा में भ्रष्टाचार, विस्थापन और सांस्कृतिक पतन—केंद्र में हैं। राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' आज़ादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन से न हटने वाले शोषण के 'कोहरे' को उजागर करता है। रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' भूमंडलीकरण से 'असुर' जनजाति की नष्ट होती संस्कृति और अस्मिता को दर्शाता है। महुआ माजी का 'मरंग गोडा निलकंठ हुआ' विकिरण और विस्थापन की समस्या उठाता है। 'बाजत अनहद ढोल', 'धूणी तपे तीर' और 'जो इतिहास में नहीं है' जैसे उपन्यास ऐतिहासिक आदिवासी विद्रोहों और बलिदानों को पुनर्जीवित करते हैं। वहीं 'कुर्राटी' पलायन और उभरती आदिवासी चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। समग्रतः इस सदी के उपन्यास जल-जंगल-जमीन की लड़ाई और आदिवासी अस्मिता की सशक्त आवाज़ हैं।

बीजशब्द: आदिवासी विमर्श, आदिवासी, अस्मिता, शोषण, विस्थापन, जल-जंगल-जमीन, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, सामाजिक-सांस्कृतिक पतन।

प्रस्तावना:

सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में हम सभी आधुनिक से उत्तर आधुनिक होते रहें जा है। आज का समय हाशिये पर सिमटकर रह गए सभी विषयों को केंद्र में लाने का है। विभिन्न विचार-विमर्शों पर चिंतन-मनन और उसपर नजर डालने का यह युग है। अस्मिता और अस्तित्व के प्रति चेतनशील वृत्ति का यह दौर है। आज तक अनेक महत्वपूर्ण विषय चाहे जिसमें किसान, मजदुर, दलित, स्त्री तथा आदिवासी हो ये सभी नागरी जीवन या फिर गाँव से सीधे-संपर्क में थे। इसलिए उनकी साहित्य क्षेत्र में चर्चाएँ शुरू होना स्वाभाविक है परंतु अभिजात्य-साहित्य के बाहर भी एक विश्व है, जो नागरी जीवन और गाँवों से भी कोसो दूर पहाड़ों, जंगलों तथा दुर्गम भागों में अपने ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आयामों से समृद्ध है। अपनी अलग दुनिया में सुख-दुख के अभाव में अपनी मस्ती में अलग तरह से जीवन जीता आ रहा है। याने अभिजात्य समाज के लिए यह एक बंद समाज था। ऐसे बंद समाज की अभिव्यक्ति करना एक जटिल प्रक्रिया होती है। इसी कारण साहित्य 'आदिवासी विमर्श' यह विषय अनछुआ रहा है और उसकी तरफ किसी का भी ध्यान नहीं गया।

परंतु भारत की आजादी, लोकशासन, भारतीय संवैधानिक अधिकार, शिक्षा, सूचना प्रौदयोगिक, यतायात के साधनों में आयी हुई क्रांती और तेजी से आदिवासी नवयुवक और युवतियां जागृत हुई। वे शिक्षीत होकर नागरी

जीवन के संपर्क में आकर अपनी संस्कृती, कला, जीवन मुल्य, गौरवशाली इतिहास और अपनी माटी की महक को अभिव्यक्त करने करने लगा। इसे ही हम 'आदिवासी साहित्य' कहेंगे। आदिवासियों पर जो साहित्य लिखा गया है उसमें या तो आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का भाव है या उनके बाह्य क्रियाकलापों को दर्शाया गया है। इस संदर्भ में रमेशचंद मीणा कहते हैं कि - "आदिवासी समाज को बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि लोग उतना ही जानेंगे जितना उन पर लिखा गया है। हिन्दी साहित्य में बहुत से विमर्शों की तुलना में आदिवासी-विमर्श की गूँज कम दिखलाई पड़ती है।"[1]

आज 21 वीं सदी में आदिवासियों में जो चेतना जाग्रत हुई है उसके परिणामस्वरूप नई-नई विचारधाराओं एवं क्रांतियों से उसका परिचय हुआ है। जिनके परिप्रेक्ष्य में वह अपनी नई-पुरानी स्थितियों का आंकलन करने लगा है। उसमें अपने होने या न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव एवं अन्याय के प्रति बोध जागा है। यही बोध प्रमुखत: उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा है।

विषयवस्तु:

21 वीं सदी में 'उपन्यास' साहित्य की सशक्त एवम् लोकप्रिय विधा रही है। मानव जीवन के सर्वांगीन रुप का विस्तृत वर्णन उपन्यासों में चित्रित हुआ है। आदिवासी साहित्य यह मुख्यतः आदिवासीयों के जीवन का इतिहास है। आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में आदिवासी जीनजीवन का विस्तृत निरुपम हुआ है। इस सदी के हिंदी उपन्यास साहित्य में 'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण आदिवासी जीवन आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास झारखंड के छोटा नागपुर पठार क्षेत्र में निवास करने वाले मुण्डा आदिवासियों के जीवन, संघर्ष, शोषण और जनचेतना को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत उपन्यास में राकेशकुमार सिंह ने आजादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन समस्याओं का कोहरा न हटने की बात की है। इस उपन्यास की कथा मुख्यतः दो पात्रों—संजीव सन्याल और रंगेनी—के इर्द-गिर्द घूमती है। संजीव सन्याल 'गजलीणेरी' गाँव में नियुक्त एक संवेदनशील और ईमानदार प्राथमिक शिक्षक हैं, जबकि 'रंगेनी' उसी गाँव की एक साहसी मुण्डा आदिवासी महिला है। इन दोनों पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने आदिवासी समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और संघर्ष को उजागर किया है। उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद भी आदिवासी शोषण समाप्त नहीं हुआ, बल्कि साहू, महाजन, बाबू और बंदूक की संस्कृति ने एक नए शोषण तंत्र को जन्म दिया। यह स्पष्ट करते हुए लेखक लिखते है –

"जंगल यहाँ से शुरू होता है बहुत जहरीला होता है कौमनिष्ट दिकू....!"

'दीकू...यानी वह व्यक्ति जो जन्मना जंगल का वासी न हो

जो जंगल के बाहर का हो। गैर-आदिवासी हो। 'दीकू'...

यानी वह जो दिक्कत का कारण बने। दिक्कते पैदा करे।"...

बाघ, भालू, गीध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है दिकू। और उसमें भी कौमनिष्ठ।"[2]

आदिवासी समाज आज भी कर्ज, बेरोजगारी और गरीबी के चक्र में फँसा हुआ है। साथ ही दूर-दराज के आदिवासी इलाकों में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार पर भी लेखक ने तीखा प्रहार किया है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल 'गजलीणेरी' गाँव की कहानी नहीं है, बल्कि यह कहानी पूरे भारत के आदिवासी समाज की पीड़ा और संघर्ष का प्रतीक है। प्रस्तुत उपन्यास धर्मांतरण की

समस्या, आदिवासी अस्मिता, श्रम, उद्यम और सामूहिक संघर्ष की भावना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास के पात्र 'संजीव' और 'रंगेनी' अन्याय के विरुद्ध मुखर होकर खड़े होते हैं और आदिवासी चेतना को जागृत करते दिखाई देते हैं।

आधुनिक समय में बढ रहे वैश्वीकरण, औद्योगीकरण के कारण आदिवासियों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार की समस्या को भी इस सदी के उपन्यासों के माध्यम से उठाने का प्रयास किया गया है। रणेंद्र द्वारा रचित 'ग्लोबल गाँव के देवता' इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो झारखंड की प्राचीन 'असुर' जनजाति के जीवन, इतिहास और संघर्ष पर आधारित है। यह उपन्यास 'असुर' इस आदिवासी जनजाति की सदियों पुरानी सभ्यता, मिथकों, दंतकथाओं और लोकविश्वासों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास का मुख्य विषय भूमंडलीकरण के कारण लुप्त होती आदिवासी संस्कृति और असुर समाज की पीड़ा है। आग और धातु की खोज करने वाली असुर जनजाति की मानवता, श्रमशीलता और सांस्कृतिक पहचान को आधुनिक वैश्विक व्यवस्था ने किस प्रकार नष्ट किया है, इसका सजीव चित्रण उपन्यास में दिखाई देता है। उपन्यासकार लिखते हैं - "आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाशमार्ग से या सेटेलाईट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खानिज सम्पदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं, तो हक तो उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर, जंगलों में, घूमते हुए लँगोट पहने असुर-बिरिजिया, उराँव-मुंडा आदिवासी, दलित-सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफन होती है। वे इन कीड़े-मकोड़ों से जल्द निजात पाना चाहते हैं।"[03] इस उपन्यास में पूरा असुर समाज ही नायक के रूप में उभरता है, जबकि लालचन, बालचन, समझून, एतवारी और ललिता जैसे पात्र कथा को सशक्त बनाते हैं। ऐतिहासिक खोज, मानवीय संवेदना और विश्लेषणात्मक दृष्टि के कारण यह उपन्यास छोटा होते हुए भी अत्यंत प्रभावशाली और सार्थक सिद्ध हुआ है।

आज आधुनिक कहें जानेवाली 21 वीं सदी में विस्थापन की समस्या आदिवासियों की प्रमुख समस्याओं में से एक है। आदिवासी शुरू से ही सीमित और संयमित रहा है, उसने प्रकृति से उतना ही लिया जितने से उसका काम चल जाए लेकिन पूंजीपतियों की लोलुप दृष्टि और तथाकथित विकास ने उन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल कर दिया। अधिकतर खनिज भंडार आदिवासी क्षेत्रों में हैं। इन खनिजों के कारण आदिवासियों को विस्थापित होने के लिए मजबूर होना पड़ता है। आजीविका के लिए उन्हें दर-दर भटकना पड़ता है। महुआ माजी द्वारा रचित उपन्यास 'मरंग गोडा निलकंठ हुआ' में आदिवासी विस्थापन की समस्या को उजागर किया गया है । यह उपन्यास झारखंड के 'सिंहभूमि क्षेत्र' में निवास करने वाले 'हो' आदिवासी समाज के जीवन, संघर्ष और अस्तित्व संकट को केंद्र में रखता है। इसकी मुख्य विषयवस्तु युरेनियम खदानों से उत्पन्न प्रदूषण, विकिरण और विस्थापन की समस्या है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र 'सगेन' एक शिक्षित और वैज्ञानिक चेतना से लैस आदिवासी युवक है, जिसके माध्यम से तीन पीढ़ियों की कथा प्रस्तुत की गई है। 'सगेन' स्थानीय प्रतिरोध को वैश्विक विकिरण-विरोधी आंदोलनों से जोड़ता है और हिरोशिमा, चेरनोबिल तथा फुकुशिमा जैसी घटनाएँ उसकी चेतना को दिशा देती हैं। यह हिंदी का पहला उपन्यास है जो विकिरण जैसी जटिल समस्या को आदिवासी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। विस्तृत कथानक के माध्यम से यह उपन्यास आदिवासी संस्कृति, जंगल-जीवन और यथार्थ को प्रामाणिक ढंग से उजागर करता है। इसके साथ ही मधुकर सिंह द्वारा लिखित 'बाजत अनहद ढोल' ऐतिहासिक–आदिवासी उपन्यास में 'संथाल' आदिवासियों द्वारा किए

गए प्रथम ब्रिटिश-विरोधी विद्रोह 'संथाल हुल' को साहित्यिक दृष्टि से प्रस्तुत करता है। इसमें अंग्रेजी शासन की क्रूरता, आर्थिक शोषण, बंधुआ मजदूरी, विस्थापन और स्त्री शोषण को प्रभावशाली रूप में चित्रित किया गया है। उपन्यास लोककथाओं, विश्वासों और जनआस्थाओं के सहारे तत्कालीन जनजीवन को जीवंत बनाता है। 'जोबा' जैसी सशक्त स्त्री पात्र आदिवासी महिलाओं में आत्मसम्मान और चेतना जागृत करती दिखाई देती है। यह कृति इतिहास के उपेक्षित पक्षों को उजागर करते हुए 'संथाल' आदिवासियों के संघर्ष और प्रतिरोध की सशक्त गाथा प्रस्तुत करती है।

'लौटते हुए' वाल्टर भेंगरा 'तरुण' द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण आदिवासी जीवन-आधारित उपन्यास है। इसमें झारखंड की आदिवासी युवक-युवतियों के महानगरों की ओर बढ़ते पलायन की समस्या को केंद्र में रखा गया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र सलोमी तथा अंजेला जैसी युवतियों के माध्यम से गरीबी, बेरोजगारी, एकांगी विकास नीति, जंगलों से बेदखली और मानसून-आधारित कृषि जैसी समस्याओं को उजागर किया गया है। यह उपन्यास पलायन को केवल सामाजिक नहीं, बल्कि मानवीय पीड़ा के रूप में प्रस्तुत करता है और पाठकों को नए दृष्टिकोण से सोचने के लिए प्रेरित करता है। इसी उपन्यास के समांतर डॉ. सतीश दुबे द्वारा रचित 'कुर्राटी' उपन्यास आदिवासियों, विशेषतः उनकी युवा पीढ़ी की शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को केंद्र में रखकर लिखा गया 'भील' इस आदिवासी जनजाति की जागृत चेतना का प्रतीक है। उपन्यास में शिक्षा, नौकरशाही, राजनीति, भूख, अभाव और पलायन के प्रभावों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथा का केंद्र नागराज शर्मा है, जो गैर-आदिवासी होते हुए भी सूत्रधार और लेखक का प्रतीक है। यह उपन्यास 'भील' आदिवासी जनजाति की मानसिकता, संघर्ष और उभरती चेतना का सशक्त दस्तावेज है।

21 वी सदी के महत्वपूर्ण आदिवासी उपन्यासों हरिराम मीणा द्वारा रचित 'धूणी तपे तीर' 1913 में 'मानगढ़' की पहाड़ियों पर घटित आदिवासी 'जालियावाला कांड' को केंद्र में रखकर लिखा गया एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वयं उपन्यासकार लिखते हैं, "देश का पहला 'जालियांवाला काण्ड' अमृतसर (1919) से छः वर्ष पूर्व दक्षिणी राजस्थान के बासंवाडा जिला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था जिसमें जालियांवाला से चार गुणा शहादत हुई थी।"[4] प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रीय पात्र 'गोविंद गुरु' है, जो सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के नायक के रूप में उभरता है। संप सभा और धूणी धामों के माध्यम से वे आदिवासियों में जागृति, संगठन और अधिकार-चेतना फैलाते दिखाई देते हैं। अंग्रेजी शासन द्वारा किए गए दमन और हजारों आदिवासियों के बलिदान को उपन्यास में मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। यह कृति आदिवासी संघर्ष, बलिदान और चेतना को पुनर्जीवित करने वाला सशक्त ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसी उपन्यास के समांतर 21 वीं सदी का उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित आदिवासी संघर्ष, बलिदान और चेतना पर आधारित महत्वपूर्ण आदिवासी उपन्यास है, जिसमें झारखंड के संथाल आदिवासियों द्वारा 1855–56 में किए गए 'हुल' विद्रोह को केंद्र में रखा गया है। उपन्यास अंग्रेजी शासन और ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण के विरुद्ध आदिवासी मुक्ति संग्राम की सशक्त गाथा प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत उपन्यास में हारिल, मुरमू और लाली के प्रेम के माध्यम से आदिवासी जीवन, संघर्ष और जिजीविषा को अभिव्यक्त किया गया है। सिदो–कान्हू, चाँद और भैरव जैसे वीरों के बलिदान को रेखांकित

करते हुए यह कृति आदिवासी इतिहास और राष्ट्रवादी चेतना को उजागर करती है।

इसप्रकार स्पष्ट होता है कि 21 वीं सदी के उपन्यासों ने आदिवासी जीवन से जूडी समस्याओं में प्रमुखत: औद्योगीकरण और पूँजीवादी विकास के कारण आदिवासियों की जल-जंगल-जमीन से बेदखली, विस्थापन और सामाजिक-सांस्कृतिक पतन को उजागर किया गया है।

निष्कर्ष:

समग्रत: कहा जा सकता है कि 21 वी सदी के प्रातिनिधिक उपन्यासों में आदिवासी समाज की यथार्थ अनुभूतियों को अत्यंत प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपन्यासों में आदिवासी जीवन की पीड़ा, शोषण, संघर्ष और चेतना किसी कल्पना या बाहरी निरीक्षण का परिणाम नहीं, बल्कि स्वानुभूत सत्य का सजीव चित्रण होता है। उनका लेखन आदिवासी समाज की आत्मा को उद्घाटित करता है, जिसमें जीवन की सहजता, सामूहिकता और प्रकृति से गहरा रिश्ता दिखाई देता है। इस सदी के प्रातिनिधिक उपन्यासों में आदिवासी जीवन में आधुनिक विकास योजनाओं के कारण उत्पन्न विस्थापन, गरीबी और असुरक्षा की समस्याएँ भी रेखांकित होती हैं।

इन आदिवासी उपन्यासों में आदिवासी जीवन से जुडी कई समस्याएँ स्पष्ट होती है जिनमें मुख्य रूप से - शिक्षा की समस्या, अंधविश्वास, आदिवासी स्त्री शोषण, आर्थिक भीषण, भ्रष्ट व्यवस्था का अत्याचार, वन कानुन लागू होने से पैदा होनेवाली समस्याएँ, नशाखोरी, जंगली प्राणियों की समस्या, भूख की समस्या आदि समस्याओं का सामना आदिवासी जनजाति को करना पड़ता है। आधुनिक समय में आधुनिकता एवम शिक्षा के कारण उनमें जागृकता निर्माण हुई है, कई अंश तक इन्होंने समस्याओं का हल निकाला है परंतु यह समस्याएँ अभी भी जड से समाप्त नहीं हुई हैं। हिंदी साहित्य का यह उत्तरदायित्व रहेगा कि 'आदिवासी विमर्श' को मुखाग्नी देता रहें जो काम इस सदी के उपन्यास साहित्य ने किया है।

संदर्भ:

1. युद्धरत आम आदमी - संपा. रमणिका गुप्ता, जुलाई-सितम्बर 2007, पृष्ठ 49
2. पठार पर कोहरा - राकेशकुमार सिंह, पृष्ठ 01
3. ग्लोबल गाँव के देवता – रणेन्द्र, पृष्ठ 85
4. धूणी तपे तीर के बारे में भूमिका - हरिराम मीणा